आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज के सान्निध्य में आयोजित राष्ट्रीय विद्वत्संगोष्ठी दिनांक 4-5 अक्टूबर 2025 – अहिक्षेत्र पार्श्वनाथ उ.प्र.

जैन दर्शन के मौलिक चिंतन एक अध्ययन

- डॉ. आशीष जैन आचार्य शाहगढ़ सागर
(राष्ट्रपति सम्मानित)
महामंत्री – प्राकृत भाषा विकास फाउण्डेशन
संयुक्त मंत्री – अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

सम्पूर्ण जैन दर्शन मौलिक है। मौलिकता के मायने है यहाँ कोई कर्ता नहीं है, कर्तृत्ववाद नहीं है। जैन दर्शन ने अहिंसा, अपर्रिग्रह, प्रमाण, नय, अनेकान्त, स्याद्वाद, कर्मसिद्धान्त, द्रव्य, तत्व, आत्मस्वातंत्र, मोक्ष, ईश्वर का अकर्तृत्ववाद आदि के मौलिक सिद्धान्त दिए हैं। ये जैन दर्शन के वे सिद्धान्त हैं जिससे जीवन सर्वश्रेष्ठ बनता है, वस्तु व्यवस्था को उत्कृष्ट ढंग से समझा जा सकता है, सभी विवादों को सुलझाया जा सकता है।

जैन दर्शन के मौलिक चिंतन का केंद्र जीव (आत्मा) और अजीव (अजीव पदार्थ) का ज्ञान है, जो जीवन के अर्थ और मोक्ष की प्राप्ति तक ले जाता है। जैन दर्शन में सात तत्त्व (जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष) की तात्त्विक व्यवस्था मोक्षमार्ग परक है, जो आत्मा को कर्मबंधन से मुक्त होने का मार्ग दिखाती है। इसमें आत्मा की शुद्धि, कर्मों का ज्ञान और उनके नाश के उपाय शामिल हैं, जिससे आत्मा मुक्त होकर परमात्मा बन जाती है। इसके अलावा, जैन दर्शन की प्रमुख अवधारणाओं में अनेकांतवाद (वस्तुओं की अनेक पक्षों से सत्यता), स्याद्वाद (ज्ञान की सापेक्षता), त्रिरत्न (सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र) शामिल हैं। यह दर्शन अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे नैतिक सिद्धांतों पर आधारित है। जैन दर्शन में कोई सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं माना जाता, बल्कि प्रत्येक जीवात्मा अपने कर्मों के आधार पर स्वतंत्र रूप से मोक्ष प्राप्त करता है, जो आत्मनिर्भरता और विवेक आधारित जीवन का संदेश देता है। जो जीव कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है, वही मोक्ष प्राप्त करता है।

जैन दर्शन के मौलिक चिंतन –

द्रव्य – जीव और अजीव। जीव, पुद्‌गल धर्म अधर्म आकाश और काल ये छह द्रव्य हैं। गुण और पर्याय से जो युक्त है वह द्रव्य है। जिसकी सत्ता है वह द्रव्य है।

सात तत्त्व – जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि।

प्रमाण – जो अच्छी तरह मान करता है, जिसके द्वारा अच्छी तरह मान किया जाता है या प्रमितिमात्र प्रमाण है ।[1] जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाता है उसे प्रमाण कहते हैं ।[2]

नय – प्रमाण के द्वारा ग्रहण की गयी वस्तु के एक अंश में वस्तु का निश्चय करने वाले ज्ञान को नय कहते हैं।[3]

अनेकांतवाद – वस्तु के अनेक पक्षों की समान मान्यता।

स्यादवाद– ज्ञान के सापेक्ष और भागिक होने की मान्यता।

त्रिरत्न – सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र।

अहिंसा – जहाँ रंच मात्र भी राग की उत्पत्ति होती है वहाँ हिंसा होती है, उसका परित्याग करना अहिंसा है।

मोक्ष – सभी कर्मों का क्षय हो जाना, संसार में पुनः वापस नहीं आना।

कर्म सिद्धान्त – स्वयं के द्वारा किए गए शुभाशुभ कर्मों का फल शुभाशुभ रूप ही प्राप्त होता है।

आत्मा – जैन दर्शन में आत्मा को स्वाभाविक रूप से शुद्ध और निर्विकार मानते हैं।

ईश्वर – प्रत्येक जीव ईश्वर बनने की क्षमता रखता है। संसार का कोई ईश्वर नहीं है जो उत्पादक, पालक, संहारक हो। कोई सर्वोच्च सृष्टिकर्ता ईश्वर नहीं, सभी जीव अपने कर्मों के अनुसार स्वतंत्र हैं।

अपरिग्रह – अनावश्यक वस्तुओं का त्याग करना, जितना आवश्यक उतना ही रखना।

जैन दर्शन मौलिक दर्शन है। इसमें मौलिकता से ही कथन किया है। इसमें उप दिष्ट सिद्धान्तों पर चिंतन करने के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि जैन दर्शन का चिंतन अद्वितीय और उत्कृष्ट रहा है। अविरोध को प्राप्त है। इसके सिद्धान्त सार्वभौमिक और सार्वकालिक है। प्राकृत भाषा के श्रेष्ठ मनीषी, प्राकृत भाषा चक्रवर्ती आचार्यश्री 108 वसुनंदी जी महाराज ने प्राकृत भाषा में

---

[1] प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् । सर्वार्थसिद्धि/1/10/98/2 (राजवार्तिक/1/10/1/49/13) ।

[2] प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्। कषायपाहुड़/1/1,1/27/37/6 (आलापपद्धति/9) (स.म./28/307/18) (न्यायदीपिका/1/10/11

[3] **प्रमाणपरिगृहीतार्थैकदेशे वस्त्वध्यवसायो नयः। धवला १/१,१,१/८ */९, (धवला ९/४,१,४५/१६ */१) (कषायपाहुड १/१ *-१४/१६८/१९९/४)।**

दंसण-परिक्खा नामक कृति का सृजन किया है। जिसमें सभी दर्शनों की विषयवस्तु के साथ-साथ जैन दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों का भी चिंतन प्रस्तुत किया है।

जैन दर्शन के संस्थापक – वस्तु का उत्पाद है तो व्यय है और व्यय है तो उत्पाद है। यह क्रम चलता ही रहेगा। जैन दर्शन कहता है इस संसार का न कोई उत्पादक, न पालक है और न ही संहारक है। यह सृष्टि अनादि से है अनंत काल तक चलेगी। इसका आदि और अंत नहीं है। इसे किसी ने बनाया नहीं है इसे कोई चलाता नहीं है। इसी प्रकार से जैन दर्शन का भी कोई संस्थापक नहीं है। यह अनादि से है और अनंत काल तक चलेगा। इस संबंध में आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज कहते हैं –

जइण-दंसणं णेयं, जिणवरेहिं सुपवट्टमाणादो।

णो को वि संठावगो, अस्स चिय अणाइणिहणादो।।735।।

जिनवरों के द्वारा प्रवर्तमान होने से यह दर्शन जैन दर्शन जानना चाहिए। अनाधिनिधन होने से इसका कोई भी संस्थापक नहीं है।

जैन दर्शन के प्रवर्तक – प्रवर्तक का तात्पर्य है कि इस काल में धर्म को समझाने वाला,बताने वाला, कल्याण का मार्ग प्रशस्त करने वाला कोई महापुरुष होगा जिसने इसका प्रवर्तन किया होगा तब आचार्यश्री लिखते हैं –

हुंडवसपिपणीए, अस्सिं किण्णु पढमो मित्थयरो दु।

उसहो आदिणाहो, जिणधम्म-पवट्टगो णेयो।।736।।

किन्तु इस हुण्डावसर्पिणी काल में प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ स्वामी जिनधर्म के प्रवर्तक जानना चाहिए।

यह अनादिनिधन जैन दर्शन सर्व द्रव्य, वस्तु, गुण, स्वभाव और पर्यायों का ख्यापक है। जैन दर्शन स्पष्ट रूप से कहता है कि सर्व द्रव्य शाश्वत हैं अनादिनिधन हैं। एक भी द्रव्य कदापि नष्ट नहीं होता है और उत्पन्न नहीं होता है।

द्रव्य का स्वरूप –

दवियदि गच्छदि ताइं ताइं सब्भावपज्जयाइं जं।

दवियं तं भण्णं ते अणण्णभूदंतु सत्तादो ।9 ।[4]

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं जो कि सत्ता से अनन्यभूत है।

गुणैर्गुणान्वा द्रुतं गतं गुणैर्द्रोष्यते, गुणांद्रोष्यतीति वा द्रव्यम् ।[5]

यथास्वं पर्यायैर्द्रूयंते द्रवंति वा तानि इति द्रव्याणि।[6]

जो गुणों के द्वारा प्राप्त किया गया था अथवा गुणों को प्राप्त हुआ था, अथवा जो गुणों के द्वारा प्राप्त किया जायेगा वा गुणों को प्राप्त होगा उसे द्रव्य कहते हैं। जो यथायोग्य अपनी-अपनी पर्यायों के द्वारा प्राप्त होते हैं या पर्यायों को प्राप्त होते हैं वे द्रव्य कहलाते हैं।[7]

अथवा द्रव्यं भव्ये इत्यनेन निपातितो द्रव्यशब्दो वेदितव्यः। द्रु इव भवतीति द्रव्यम् । कः उपमार्थः। द्रु इति दारु नाम यथा अग्रंथि अजिह्मं दारु तक्ष्णोपकल्प्यमानं तेन तेन अभिलषितेनाकारेण आविर्भवति, तथा द्रव्यमपि आत्मपरिणामगमनसमर्थं पाषाणखननोदकवदविभक्तकर्तृकरणमुभयनिमित्तवशोपनीतात्मना तेन तेन पर्यायेण द्रु इव भवतीति द्रव्यमित्युपमीयते।[8]

=अथवा द्रव्य शब्द को इवार्थक निपात मानना चाहिए। 'द्रव्यं भव्य' इस जैनेंद्र व्याकरण के सूत्रानुसार 'द्रु' की तरह जो हो वह 'द्रव्य' यह समझ लेना चाहिए। जिस प्रकार बिना गाँठ की सीधी द्रु अर्थात् लकड़ी बढ़ई आदि के निमित्त से टेबल कुर्सी आदि अनेक आकारों को प्राप्त होती है, उसी तरह द्रव्य भी उभय (बाह्य व आभ्यंतर) कारणों से उन-उन पर्यायों को प्राप्त होता रहता है। जैसे 'पाषाण खोदने से पानी निकलता है यहाँ अविभक्त कर्तृकरण है उसी प्रकार द्रव्य और पर्याय में भी समझना चाहिए।

द्रव्य का लक्षण सत् तथा उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य -

सत् द्रव्यलक्षणम् ।29।[9]

---

[4] पंचास्तिकाय/9 (राजवार्तिक/1/33/1/95/4)।

[5] सर्वार्थसिद्धि/1/5/17/5

[6] सर्वार्थसिद्धि/5/2/266/10

[7] (राजवार्तिक/5/2/1/436/14); (धवला 1/1,1,1/183/11); (धवला 3/1,2,1/2/1); (धवला 9/4,1,45/167/10); (धवला 15/33/9); (कषायपाहुड़ 1/1,14/177/211/4); (नयचक्र बृहद्/36); (आलापपद्धति/6); (योगसार/अमितगति /2/5)।

[8] राजवार्तिक/5/2/2/436/26 [जैनेंद्र व्याकरण/4/1/158]

[9] तत्त्वार्थसूत्र/5/29

द्रव्य का लक्षण सत् है।

दव्वं सल्लक्खणयं उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तं।[10]

जो सत् लक्षणवाला तथा उत्पादव्ययध्रौव्य युक्त है उसे द्रव्य कहते हैं। [11]

अस्तित्वं हि किल द्रव्यस्य स्वभावः, तत्पुनस्य साधननिरपेक्षत्वादनाद्यनंततयाहेतुकयैकरूपया वृत्त्या नित्यप्रवृत्तत्वात् ...द्रव्येण सहैकत्वमवलंबमानं द्रव्यस्य स्वभाव एव कथं न भवेत् ।[12]

अस्तित्व वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है, और वह अन्य साधन से निरपेक्ष होने के कारण अनाद्यनंत होने से तथा अहेतुक एकरूप वृत्ति से सदा ही प्रवर्तता होने के कारण द्रव्य के साथ एकत्व को धारण करता हुआ, द्रव्य का स्वभाव ही क्यों न हो ?

द्रव्य के भेद – आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज कहते हैं –

दव्वो मूले दुविहो, जीवाजीवाणं चिय भेयादो।

णाण-दंसण-चेयणा-संजुदो जीवो णादव्वो।।756।।

जीव और अजीव के भेद से द्रव्य मूल में दो प्रकार का जानना चाहिए। ज्ञान व दर्शन चेतना से युक्त जीव है।

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा य काल आयासं।

तच्चत्था इदि भणिदा णाणागुणपज्जएहिं संजुत्ता।9।[13]

जीव, पुद्गलकाय, धर्म, अधर्म, काल और आकाश ये तत्त्वार्थ कहे हैं जो कि विविध गुण और पर्यायों से संयुक्त हैं।

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः।1।द्रव्याणि।2।जीवाश्च।3।कालश्च।39।[14]

---

[10] पंचास्तिकाय/10
[11] (प्रवचनसार/95-96) (नयचक्र बृहद्/37) (आलापपद्धति/6) (योगसार (अमितगति)/2/6) (पंचाध्यायी / पूर्वार्ध/8,86)
[12] प्रवचनसार/ 'तत्त्व प्रदीपिका' 96
[13] नियमसार/9
[14] तत्त्वार्थसूत्र/5/1-3,39

=धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये अजीवकाय हैं।1। ये चारों द्रव्य हैं।2। जीव भी द्रव्य है।3। काल भी द्रव्य है।39। [15]

आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज दंसण-परिक्खा में लिखते हैं –

सदो हु दव्वलक्खणं, उप्पादव्वयधुवत्तसंजुत्तो।

असदो णो उप्पज्जदि, सदो णित्थ विणस्सेदि तहा।।739।

द्रव्य का लक्षण सत् है एवं उत्पाद,व्यय और ध्रौव्य से युक्त सत् है। सत् का कभी विनाश नहीं होता है और असत् कभी उत्पन्न नहीं होता है।

सात तत्त्व – प्रयोजनभूत वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते हैं। परमार्थ में एक शुद्धात्मा ही प्रयोजनभूत तत्त्व है। वह संसारावस्था में कर्मों से बँधा हुआ है। उसको उस बंधन से मुक्त करना इष्ट है। ऐसे हेय व उपादेय के भेद से वह दो प्रकार का है अथवा विशेष भेद करने से वह सात प्रकार का कहा जाता है। यद्यपि पुण्य व पाप दोनों ही आस्रव हैं, परंतु संसार में इन्हीं दोनों की प्रसिद्धि होने के कारण इनका पृथक् निर्देश करने से वे तत्त्व नौ हो जाते हैं।

तद् भावस्तत्त्वम् ।[16]

जिस वस्तु का जो भाव है वह तत्त्व है। [17]

स्वं तत्त्वं स्वतत्त्वं, स्वोभावोऽसाधारणो धर्मः।[18]

अपना तत्त्व स्वतत्त्व होता है, स्वभाव असाधारण धर्म को कहते हैं। अर्थात् वस्तु के असाधारण रूप स्वतत्त्व को तत्त्व कहते हैं।

आत्मनस्तत्त्वमात्मनः स्वरूपम् ।[19]

आत्म तत्त्व अर्थात् आत्मा का स्वरूप।

यस्य यद्भवति तत्तदेव भवति...इति तत्त्व संबंधे जीवति।[20]

---

[15] (योगसार/अमितगति/2/1) (द्रव्यसंग्रह/15/50)।
[16] सर्वार्थसिद्धि/2/1/150/11
[17] (सर्वार्थसिद्धि/5/42/317/5); (धवला 13/5,5,50/285/11); (मोक्षमार्ग प्रकाशक/4/80/14)।
[18] राजवार्तिक/2/1/6/100/25
[19] समाधिशतक टीका/35/235

जिसका जो होता है वह वही होता है...ऐसा तात्त्विक संबंध जीवित होने से...।

तत्व के भेद – तत्व सात प्रकार के हैं -

जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम् ।7।[21]

=जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं।

आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज कहते हैं –

जीवाजीवासवाण, बंध-संवर-णिज्जरा-मोक्खाणं।

सत्त-तच्च-सद्दहणं विणा णेव को वि सद्दिट्ठी।।792।।

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष इन सात तत्वों के श्रद्धान के बिना कोई भी सम्यग्दृष्टि नहीं होता है।

प्रमाण – स्व व पर प्रकाशक सम्यग्ज्ञान प्रमाण है । जैनदर्शनकार नैयायिकों की भाँति इंद्रियविषय व सन्निकर्ष को प्रमाण नहीं मानते । स्वार्थ व परार्थ के भेद से अथवा प्रत्यक्ष व परोक्ष के भेद से वह दो प्रकार का है । परार्थ तो परोक्ष ही होता है, पर स्वार्थ प्रत्यक्ष व परोक्ष दोनों प्रकार का होता है । तहाँ मतिज्ञानात्मक स्वार्थ प्रमाण तो सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है, और श्रुतज्ञानात्मक स्वार्थ परोक्ष है । अवधि, मनःपर्यय और केवल ये तीनों ज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष हैं । नैयायिकों के द्वारा मान्य अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, ऐतिह्य व शब्दादि सब प्रमाण यहाँ श्रुतज्ञानात्मक परोक्षप्रमाण में गर्भित हो जाते हैं । पहले न जाना गया अपूर्व पदार्थ प्रमाण का विषय है, और वस्तु की सिद्धि अथवा हित-प्राप्ति व अहित-परिहार इसका फल है ।

जो अच्छी तरह मान करता है, जिसके द्वारा अच्छी तरह मान किया जाता है या प्रमितिमात्र प्रमाण है ।[22] जिसके द्वारा पदार्थ जाना जाता है उसे प्रमाण कहते हैं ।[23]

प्रमाण के भेद – तत्प्रमाणे। आद्ये परोक्षम्। प्रत्यक्षमन्यत्।[24]

---

[20] समयसार / आत्मख्याति/356/491/1
[21] तत्त्वार्थसूत्र/1/4
[22] प्रमिणोति प्रमीयतेऽनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् । सर्वार्थसिद्धि/1/10/98/2 (राजवार्तिक/1/10/1/49/13) ।
[23] प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्। कषायपाहुड़/1/1,1/27/37/6 (आलापपद्धति/9) (स.म./28/307/18) (न्यायदीपिका/1/10/11
[24] तत्वार्थसूत्र1/10-12

वह प्रमाण दो प्रकार का है – प्रत्यक्ष और परोक्ष।

आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज कहते हैं –

मदी सुदोही णाणं, मणपज्जयं च केवलं णाणं।

पंचविहं सण्णाणं, पमाणं णिच्चं जिणसमये।।821।।

सम्यग्ज्ञान पाँच का प्रकार का है – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान। जिनशासन में नित्य सम्यग्ज्ञान प्रमाण है।

अनुयोग द्वार – वस्तु का कथन करने में जिन अधिकारों की आवश्यकता होती है उन्हें अनुयोगद्वार कहते हैं।

किमणिओगद्दारं णाम। अहियारो भण्णमाणस्थस्स अवगमोवाओ।[25]

अनुयोगद्वार किसे कहते हैं? कहे जाने वाले अर्थ के जानने के उपायभूत अधिकार को अनुयोगद्वार कहते हैं।

अनुयोगद्वार के भेद –

1. उपक्रम आदि चार अनुयोगद्वार - चत्वारि हि प्रवचनानुयोगमहानगरस्य द्वाराणि उपक्रमः निक्षैपः अनुगमः नयश्चेति।[26]

प्रवचन अनुयोगरूपी महानगर के चार द्वार हैं - उपक्रम, निक्षेप, अनुगम और नय।

2. निर्देश, स्वामित्व आदि छः अनुयोगद्वार - निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः ॥7॥[27]

निर्देश, स्वामित्व, साधना (कारण), अधिकरण (आधार), स्थिति (काल) तथा विधान (प्रकार)-ऐसे छः प्रकार से सात तत्त्वों को जाना जाता है।[28]

किं कस्स केण कत्थ व केवचिरं कदिविधो य भावो त्ति।

छहि अणिओगद्दारेहि सव्वभावाणुगंतव्वा ॥18॥[29]

---

[25] कषायपाहुड़ पुस्तक 3/3-22/$7/3

[26] स्याद्वादमंजरी श्लोक 28/309/22

[27] तत्त्वार्थसूत्र अध्याय 1/7

[28] (लधीयस्त्रय पृ. 15)।

पदार्थ क्या है (निर्देश), किसका है (स्वामित्व), किसके द्वारा होता है (साधन), कहाँ पर होता है (अधिकरण), कितने समय तक रहता है (स्थिति), कितने प्रकार का है (विधान), इस प्रकार इन छह अनुयोगद्वारों से संपूर्ण पदार्थों का ज्ञान करना चाहिए।

आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज कहते हैं –

पदत्था संविदेदु, उवाओ चिय अणुजोगद्दारं अवि।

सडविहमुट्ठविहं वा, अणेगविहं वि मुणेदव्वं।908।।

अनुयोग द्वार भी निश्चय से पदार्थों को जानने का उपाय हैं। वह छः, आठ या अनेक प्रकार का भी जानना चाहिए।

जीव के भाव – चेतन व अचेतन सभी द्रव्य के अनेकों स्वभाव हैं। वे सब उसके भाव कहलाते हैं। जीव द्रव्य की अपेक्षा उनके पाँच भाव हैं–औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक। कर्मों के उदय से होने वाले रागादि भाव औदयिक। उनके उपशम से होने वाले सम्यक्त्व व चारित्र औपशमिक हैं। उनके क्षय से होने वाले केवलज्ञानादि क्षायिक हैं। उनके क्षायोपशम से होने वाले मतिज्ञानादि क्षायोपशमिक हैं। और कर्मों के उदय आदि से निरपेक्ष चैतन्यत्व आदि भाव पारिणामिक हैं। एक जीव में एक समय में भिन्न-भिन्न गुणों की अपेक्षा भिन्न-भिन्न गुणस्थानों में यथायोग्य भाव पाये जाने संभव हैं, जिनके संयोगी भंगों को सान्निपातिक भाव कहते हैं। पुद्गल द्रव्य में औदयिक, क्षायिक व पारिणामिक ये तीन भाव तथा शेष चार द्रव्यों में केवल एक पारिणामिक भाव ही संभव है।

भवनं भवतोति वा भावः।[30]

= होना मात्र या जो होता है सो भाव है।

सहकारिसंनिधौ च स्वतः कथंचित्प्रवृत्तिरेव भावलक्षणम्।[31]

विसदृश कार्य की उत्पत्ति में जो सहकारिकारण होता है, उसकी सन्निधि में स्वतः ही द्रव्य कथंचित् उत्तराकार रूप से जो परिणमन करता है, वही भाव का लक्षण है।

---

[29] धवला पुस्तक 1/1,1,1/18/34
[30] राजवार्तिक/1/5/28/9
[31] सिद्धि विनिश्चय/ टीका/4/19/298/19

भावो खलु परिणामो।[32]

= पदार्थों के परिणाम को भाव कहते हैं।[33]

आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज कहते हैं –

जीवस्स असाहारण-पणभावा जिणवेरहि णिद्दिट्ठा।

णेव विज्जंति कया वि, असाहारणा ते अण्णेसु।।915।।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा जीव के पाँच असाधारण भाव निर्दिष्ट किए गय हैं क्योंकि वे जीव के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों में विद्यमान नहीं होते हैं इसलिए वे असाधारण भाव कहे जाते हैं। वे इस प्रकार से हैं – औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक और पारिणामिक। इनके क्रमशः दो, नौ, अट्ठारह, इक्कीस व तीन भेद हैं।

कर्मवाद - कर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं यथा–कर्म कारक, क्रिया तथा जीव के साथ बंधने वाले विशेष जाति के पुद्गल स्कंध। कर्म कारक जगत् प्रसिद्ध है, क्रियाएँ समवदान व अधःकर्म आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं जिनका कथन इस अधिकार में किया जायेगा। परंतु तीसरे प्रकार का कर्म अप्रसिद्ध है। केवल जैन सिद्धांत ही उसका विशेष प्रकार से निरूपण करता है। वास्तव में कर्म का मौलिक अर्थ तो क्रिया ही है। जीव-मन-वचन काय के द्वारा कुछ न कुछ करता है। वह सब उसकी क्रिया या कर्म है और मन, वचन व काय ये तीन उसके द्वार हैं। इसे जीव कर्म या भाव कर्म कहते हैं।

यहाँ तक तो सबको स्वीकार है। परंतु इस भाव कर्म से प्रभावित होकर कुछ सूक्ष्म जड़ पुद्गल स्कंध जीव के प्रदेशों में प्रवेश पाते हैं और उसके साथ बँधते हैं यह बात केवल जैनागम ही बताता है। ये सूक्ष्म स्कंध अजीव कर्म या द्रव्य कर्म कहलाते हैं और रूप रसादि धारक मूर्तीक होते हैं। जैसे-जैसे कर्म जीव करता है वैसे ही स्वभाव को लेकर ये द्रव्य कर्म उसके साथ बँधते हैं और कुछ काल पश्चात् परिपक्व दशा को प्राप्त होकर उदय में आते हैं। उस समय इनके प्रभाव से जीव के ज्ञानादि गुण तिरोभूत हो जाते हैं। यही उनका फलदान कहा जाता है। सूक्ष्मता के कारण वे दृष्ट नहीं हैं।

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम् ।17।[34]

---

[32] धवला 1/1,8/ गाथा 103/159
[33] (पंचाध्यायी / उत्तरार्ध 26)।
[34] वैशेषिक दर्शन/1-1/17/31

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म।1।[35]

1. द्रव्य के आश्रय रहने वाला तथा अपने में अन्य गुण न रखने वाला बिना किसी दूसरे की अपेक्षा के संयोग और विभागों में कारण होने वाला कर्म है। गुण व कर्म में यह भेद है कि गुण तो संयोग विभाग का कारण नहीं है और कर्म उनका कारण है।17।

2. आत्मा के संयोग और प्रयत्न से हाथ में कर्म होता है।1।

नोट—जैन वांगमय में यही लक्षण पर्याय व क्रिया के हैं—देखें वह वह नाम । अंतर इतना ही है कि वैशेषिक जन परिणमन रूप भावात्मक पर्याय को कर्म न कहकर केवल परिस्पंदन रूप क्रियात्मक पर्याय को ही कहता है, जबकि जैनदर्शन दोनों प्रकार की पर्यायों को।

कर्मशब्दोऽनेकार्थः--क्वचित्कर्तुरीप्सिततमे वर्तते—यथा घटं करोतीति। क्वचित्पुण्यापुण्यवचनः--यथा ''कुशलाकुशलं कर्म' ' [आप्त मीमांसा 8] इति। क्वचिच्च क्रियावचनः--यथा उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुन्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि [वैशेषिक दर्शन/1/1/7] इति। तत्रेह क्रियावाचिनो ग्रहणम् ।

कर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं--'घटं करोति' में कर्मकारक कर्म शब्द का अर्थ है। 'कुशल अकुशल कर्म' में पुण्य पाप अर्थ है। उत्क्षेपण अवक्षेपण आदि में कर्म का क्रिया अर्थ विवक्षित है। यहाँ आश्रव के प्रकरण में क्रिया अर्थ विवक्षित है अन्य नहीं (क्योंकि वही जड़ कर्मों के प्रवेश का द्वार है)।[36]

आचार्यश्री वसुनंदी जी महाराज कहते हैं -

कम्मबद्धजोग्गा कम्मवग्गणारूव-पोग्गलखंधा हु।

जीवस्स वियारि-भाव-णिमित्तं लहिय बंधदि कम्मं।।924।।

जीव के विकारी भावों का निमित्त प्राप्त कर कर्मबन्ध के योग्य कर्मवर्गणा रूप पुद्‌गल स्कन्ध जो जीव के साथ बंधते हैं, वे कर्म हैं।

भवभमणस्स दु हेदू, सुह-दुक्ख-कारणं जम्मादीणं।

---

35 वैशेषिक दर्शन/5-1/1/150
36 राजवार्तिक/6/1/3/504/11

कम्मं मुक्खं णेयं, विभावपरिणाम-कारणं पि।।925।।

कर्म संसार परिभ्रमण का, जन्मादि का एवं सुख-दुःख का मुख कारण जानना चाहिए। यह जीव के विभाव परिणाम का कारण भी है।

अनेकांत – वस्तु में एक ही समय अनेकों क्रमवर्ती व अक्रमवर्ती विरोधी धर्मों, गुणों, स्वभावों व पर्यायों के रूप में-भली प्रकार प्रतीति के विषय बन रहे हैं। जो वस्तु किसी एक दृष्टि से नित्य प्रतीत होती है वही किसी अन्य दृष्टि से अनित्य प्रतीत होती है, जैसे व्यक्ति वह का वह रहते हुए भी बालक से बूढ़ा और गँवार से साहब बन जाता है। यद्यपि विरोधी धर्मों का एक ही आधार में रहना साधारण जनों को स्वीकार नहीं हो सकता पर विशेष विचारक जन दृष्टि भेद की अपेक्षाओं को मुख्य गौण करके विरोध में भी अविरोध का विचित्र दर्शन कर सकते हैं। इसी विषय का इस अधिकार में कथन किया गया है।

को अणेयंतो णाम। जच्चंतरत्तं।[37]

अनेकांत किसको कहते हैं? जात्यंतरभाव को अनेकांत कहते हैं (अर्थात् अनेक धर्मों या स्वादों के एकरसात्मक मिश्रण से जो जात्यंतरपना या स्वाद उत्पन्न होता है, वही अनेकांत शब्द का वाच्य है)।

यदेव तत्तदेवातत्, यदेवैकं तदेवानेकं, यदेव सत्तदेवासत्, यदेव नित्यं तदेवानित्यसित्येकवस्तुनि वस्तुत्वनिष्पादकपरस्परविरुद्धशक्तिद्वयप्रकाशनमनेकांतः।[38]

जो तत् है वही अतत् है, जो एक है वही अनेक है, जो सत् है वही असत् है, जो नित्य है वही अनित्य है, इस प्रकार एक वस्तुमें वस्तुत्वकी उपजानेवाली परस्पर विरुद्ध दो शक्तियों का प्रकाशित होना अनेकांत है।

अनेके अंता धर्माः सामान्यविशेषपर्याया गुणा यस्येति सिद्धोऽनेकांतः।[39]

जिसके सामान्य विशेष पर्याय व गुणरूप अनेक अंत या धर्म हैं, वह अनेकांत रूप सिद्ध होता है।

आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज कहते हैं –

पत्तेयं पदत्थम्मि, अणेगधम्मा सव्वदा सव्वत्थ।

[37] धवला पुस्तक 15/25/1

[38] समयसार / आत्मख्याति परिशिष्ट

[39] न्यायदीपिका अधिकार 3/$76

अणेगधम्मविरहिदं, णेव कं पि वत्थु विस्सम्मि ।।949।।

जह अत्थो सदासदो, णिच्चमणिच्चं भेयाभेयो तह।

खंडाखंडो य दिट्ठिगोयरादिट्ठिगोयरो अवि । ॥950॥

सुहमो थूलो दूरो, णिउडो चराचरो दइअद्दइओ।

मुत्तामुत्तो सहाव-विहावजुदो सुद्धासुद्धो ।।951।।

अप्पदेसी पदेसी, णेयण्णेयो अणुभवगम्मिदरो।

छउमत्थजीवेहि णो, सम्भवो सव्वधम्मणाणं। 1952॥ (चउक्कं)

प्रत्येक पदार्थ में सर्वदा और सर्वत्र अनेक धर्म विद्यमान हैं। विश्व में कोई भी वस्तु अनेक धर्मों से रहित नहीं है। जैसे पदार्थ सत्-असत्, नित्य-अनित्य, भेद-अभेद, खण्ड-अखण्ड, दृष्टिगोचर-अदृष्टिगोचर, सूक्ष्म-स्थूल दूर-निकट, चर-अचर, द्वैत-अद्वैत, मुक्त अमुक्त, स्वभाव-युक्त - विभावयुक्त, शुद्ध-अशुद्ध, अप्रदेशी-प्रदेशी ज्ञेय अज्ञेय, अनुभवगम्य-अनुभव-अगम्य भी है। किन्तु छद्मस्थ जीवों के द्वारा सभी धर्मों का ज्ञान सम्भव नहीं है।

वत्थूण पुण्ण-धम्मं, विणा अणेगंतालंबणेणं दु।

जाणिदु णो समत्थो, को वि चिय जीवुल्लो कया वि॥953॥

कोई भी जीव अनेकान्त के आलम्बन के बिना वस्तुओं के पूर्ण धर्म को जानने में कदापि समर्थ नहीं है।

अणेगंतेणं विणा णो, को वि सक्को णादं जहत्थं।

गहणीयो अणेगंत-धम्मो णाणीजणेहिं तं।।954।।

अनेकान्त के बिना कोई भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने में समर्थ नहीं है। अतः ज्ञानजनों के द्वारा अनेकान्त धर्म ग्राह्य है।

स्याद्वाद – अनेकांतमयी वस्तु का कथन करने की पद्धति स्याद्वाद है। किसी भी शब्द या वाक्य के द्वारा सारी की सारी वस्तु का युगपत् कथन करना अशक्य होने से प्रयोजनवश कभी एक धर्म को मुख्य करके कथन करते हैं और कभी दूसरे को। मुख्य धर्म को सुनते हुए श्रोता को अन्य धर्म भी गौण रूप से

स्वीकार होते रहें उनका निषेध न होने पावे इस प्रयोजन से अनेकांतवादी अपने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् या कथंचित् शब्द का प्रयोग करता है।

स्याद्वाद का लक्षण –

णियमणिसेहणसीलो णिपादणादो य जोहु खलु सिद्धो।

सो सियसद्दो भणियो जो सावेक्खं पसाहेदि ।251।[40]

जो नियम का निषेध करने वाला है, निपात से जिसकी सिद्धि होती है, जो सापेक्षता की सिद्धि करता है वह स्यात् शब्द कहा गया है।

सर्वथा नियमत्यागी यथादृष्टमपेक्षकः।

स्याच्छब्दस्तावके न्याये नान्येषामात्मविद्विषाम् ।102।

अनेकांतोऽप्यनेकांतः प्रमाणनयसाधनः।

अनेकांतः प्रमाणात्ते तदेकांतोऽर्पितांनयात् ।103।[41]

धर्मिणोऽनंतरूपत्वं धर्माणां न कथंचन।

अनेकांतोऽप्यनेकांत इति जैनमतं ततः।[42]

=1. सर्वथा रूप से–सत् ही है, असत् ही है इत्यादि रूप से प्रतिपादन के नियम का त्यागी और यथादृष्ट को–जिस प्रकार से वस्तु प्रमाण प्रतिपन्न है उसको अपेक्षा में रखने वाला जो स्यात् शब्द है वह आपके न्याय (मत) में है। दूसरों के न्याय में नहीं है जो कि आपके वैरी हैं।102। आपके मत में अनेकांत भी प्रमाण और नय साधनों को लिये हुए अनेकांत स्वरूप है, प्रमाण की दृष्टि से अनेकांत स्वरूप दृष्टिगत होता है और विवक्षित नय की अपेक्षा से अनेकांत में एकांत रूप सिद्ध होता है।103। [43]

2. धर्मी अनेकांत रूप है क्योंकि वह अनेक धर्मों का समूह है परंतु धर्म अनेकांत रूप् कदाचित् भी नहीं क्योंकि एक धर्म के आश्रय अन्य धर्म नहीं पाया जाता (इस प्रकार अनेकांत भी अनेकांत रूप है अर्थात् अनेकांतात्मक वस्तु अनेकांत रूप भी है और एकांतरूप भी है।

---

[40] नयचक्र बृहद्/251

[41] स्वयंभू स्तोत्र/ मूल/102-103

[42] समयसार / तात्पर्यवृत्ति/ स्याद्वाद अधिकार/519/11/पर उद्वत

[43] (समयसार/ स्याद्वाद अधिकार/तात्पर्य वृत्ति/519/9)।

स्यात्कथंचित् विवक्षितप्रकारेणानेकांतरूपेण वदनं वादो जल्पः कथनं प्रतिपादनमिति स्याद्वादः।[44]

स्यात् अर्थात् कथंचित् या विवक्षित प्रकार से अनेकांत रूप से वदना, वाद करना, जल्प करना, कहना प्रतिपादन करना स्याद्वाद है।

उत्पाद्येत उत्पाद्यते येनासौ वादः, स्यादिति वादो वाचकः शब्दो यस्यानेकांतवादस्यादौ स्याद्वादः।[45]

'उत्पाद्यते' अर्थात् जिसके द्वारा प्रतिपादन किया जाये वह वाद कहलाता है। स्याद्वाद का अर्थ है वह वाद जिसका वाचक शब्द 'स्यात्' हो अर्थात् अनेकांतवाद है।

आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज कहते हैं –

पव्वदसिहरे णिम्मिद-मंदिरं गमिदु-मणेगलहुमग्गा।

सम्भवा किण्णु जीवो, समयेगे गच्छदि एगेण ।।962।।

जह तह सिआवाओ दु, पुण्ण धम्मं जाणिदु सक्कंतो।

वत्थुस्स एगसमये सक्कदि हि कहिदुमेग-धम्मा 1963॥ (जुम्मं)

जैसे पर्वत के शिखर पर निर्मित मन्दिर में जाने के लिए अनेक लघु मार्ग सम्भव हैं किन्तु जीव एक समय में एक ही मार्ग से जा सकता है। उसी प्रकार स्याद्वाद पूर्ण धर्म को जानने में समर्थ होता हुआ भी एक समय में वस्तु के एक धर्म को ही कहने में समर्थ होता है।

एगावेक्खाए जो, धम्मो खलु भासदे पुण्णसच्चं।

विदियावेक्खाए पुण, सक्को पुण्णं असच्चं अवि ॥964॥

एक किसी अपेक्षा से जो धर्म पूर्ण सत्य प्रतिभासित होता है, वही दूसरे धर्म की अपेक्षा से पूर्ण असत्य भी सम्भव है।

सावेक्खवयणं सम्म-अवेक्खाजुद-वयणं सियावायो।

---

[44] समयसार / तात्पर्यवृत्ति/स्याद्वाद अधिकार/513/17

[45] स्वयंभू स्तोत्र/ टीका/134/264

सव्वविवादणासगो, सण्णाणपयासगो णिच्चं ॥965॥

सापेक्ष वचन वा सम्यक् अपेक्षा से युक्त वचन स्याद्वाद है। यह स्याद्वाद नित्य ही सर्व विवाद का नाशक और सम्यग्ज्ञान का प्रकाशक है।

सिआवायो हु सम्मं, कहणविही जाण जहत्थ-णाणस्स।

वत्थूणं विज्जेदि हु, सव्वत्थ सया खे दव्वोव्व ।।966।।

सम्यक् कथन विधि स्याद्वाद जाननी चाहिए। वस्तुओं के यथार्थज्ञान के लिए यह सर्वत्र व सर्वदा उस प्रकार विद्यमान रहती है जैसे-आकाश में द्रव्य।

अंसं ण पुण्णणाणं, भण्णेदि सिआवायजुदो इत्थं।

कं पि सावेक्ख-णाणं, णेव बोहदि मिच्छा कया वि।।982।।

इस प्रकार स्याद्वाद से युक्त पुरुष अंश ज्ञान को पूर्णज्ञान नहीं कहता है एवं किसी भी सापेक्ष ज्ञान को कदापि मिथ्या नहीं समझता है।

सप्तभंगी - प्रश्नकार के प्रश्नवश अनेकांत स्वरूप वस्तु के प्रतिपादन के सात ही भंग होते हैं। न तो प्रश्न सात से हीन या अधिक हो सकते हैं और न ये भंग ही। उदाहरणार्थ–

1. जीव चेतन स्वरूप ही है,

2. शरीर स्वरूप बिलकुल नहीं;

3. क्योंकि स्वलक्षणरूप अस्तित्व पर की निवृत्ति के बिना और पर की निवृत्ति स्व लक्षण के अस्तित्व के बिना हो नहीं सकती है;

4. पृथक् या क्रम से कहे गये ये स्व से अस्तित्व और पर से नास्तित्व रूप दोनों धर्म वस्तु में युगपत् सिद्ध होने से वह अवक्तव्य है;

5. अवक्तव्य होते हुए भी वह स्वस्वरूप से सत् है;

6. अवक्तव्य होते हुए भी वह पर से सदा व्यावृत्त ही है;

7 और इस प्रकार वह अस्तित्व, नास्तित्व, व अवक्तव्य इन तीन धर्मों के अभेद स्वरूप है।

इस अवक्तव्य को वक्तव्य बनाने के लिए इन सात बातों का क्रम से कथन करते हुए प्रत्येक वाक्य के साथ कथंचित् वाचक 'स्यात्' शब्द का प्रयोग करते हैं जिसके कारण अनुक्त भी शेष छह बातों का संग्रह हो जाता है, और साथ ही प्रत्येक अपेक्षा के अवधारणार्थ एवकार का भी। स्यात् शब्द सहित कथन होने के कारण यह पद्धति स्याद्वाद् कहलाती है।

एकस्मिन् वस्तुनि प्रश्नवशाद् दृष्टेनेष्टेन च प्रमाणेनाविरुद्धा विधिप्रतिषेधविकल्पना सप्तभंगी बिज्ञेया।[46]

प्रश्न के अनुसार एक वस्तु में प्रमाण से अविरुद्ध विधि प्रतिषेध धर्मों की कल्पना सप्तभंगी है।

एकस्मिन्नविरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः। सदादिकल्पना या च सप्तभंगीति सा मता।[47]

प्रमाण वाक्य से अथवा नय वाक्य से, एक ही वस्तु में अविरोध रूप से जो सत्-असत् आदि धर्म की कल्पना की जाती है उसे सप्तभंगी कहते हैं।

सप्तानां भंगानां समाहारः सप्तभंगीति।[48]

=सप्तभंगों के समूह को सप्तभंगी कहते हैं।[49]

प्राश्निकप्रश्नज्ञानप्रयोज्यत्वे सति,

एकवस्तुविशेष्यकाविरुद्धविधिप्रतिषेधात्मकधर्मप्रकारकबोधजनकसप्तवाक्यपर्याप्तसमुदायत्वम्।[50]

प्रश्नकर्ता के प्रश्नज्ञान का प्रयोज्य रहते, एक पदार्थ विशेष्यक अविरुद्ध विधि प्रतिषेध रूप नाना धर्म प्रकारक बोधजनक सप्त वाक्य पर्याप्त समुदायता (सप्तभंगी है)।

आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज कहते हैं –

सत्तभंगा पसिद्धा, जिणदंसणे चिय अणाइणिहणम्मि।

पदत्थाणं च जहत्थ-णाणं च ओग्गहिदुं सया हि।।983।।

पदार्थों के यथार्थ ज्ञान को ग्रहण करने के लिए अनादिनिधन जिनदर्शन में सप्तभंग सदा ही प्रसिद्ध है।

---

46 राजवार्तिक/1/6/5/33/15, (स्याद्वादमंजरी /23/278/8)।
47 पंचास्तिकाय / तात्पर्यवृत्ति/14/30/15 पर उद्धृत
48 न्यायदीपिका/3/82/127/3
49 (सप्तभंगीतरंगिणी/1/10)।
50 सप्तभंगीतरंगिणी/3/1

2. सप्तभंगों के नाम –

सिय अत्थि णत्थि उहय अव्वत्तव्वं पुणो य तत्तिदयं।

दव्वं खु सत्तभंगं आदेशवसेण संभवदि।14।[51]

आदेश (कथन) के वश द्रव्य वास्तव में स्यात्-अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अस्ति-नास्ति, स्यात् अवक्तव्य और अवक्तव्यता युक्त तीन भंगवाला (स्यात् अस्ति अवक्तव्य, स्यात् नास्ति अवक्तव्य, और स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य) इस प्रकार सात भंगवाला है।14।[52]

आस्तिक-नास्तिक विचार- आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज ने इस प्रकरण को पृथक् से रखा है। यह एक महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि जैनदर्शन को भारतीय दर्शनों में नास्तिक कहा गया है। उसका कारण है कि जैन दर्शन ईश्वर को कर्ता नहीं मानता है। जबकि जैन दर्शन ने ईश्वर को भी माना है उसकी सत्ता को भी माना है। इस संबंध में –

जो ईसर-अस्थित्तं, मण्णेदि तं ण सिट्ठिकत्ता, किण्णु।

सो जहत्थ-अत्थिगो दु, जं सिट्ठी ण रयिदा केणं ।। 1004॥

जो ईश्वर के अस्तित्व को जानता है किन्तु उनको सृष्टि का कर्त्ता नहीं मानता वह यथार्थ आस्तिक है क्योंकि सृष्टि किसी के द्वारा भी नहीं रची गई।

णत्थिगो हंदि ईसर-अत्थित-अगाहगो किण्णु जो।

ईसर-सिद्धि कत्ता, मण्णदि सो ति णत्थिगो दु।।1005॥

जो ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता वह तो नास्तिक है ही किन्तु जो ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानता है वह भी नास्तिक है।

जो जीवदि छः द्रव्यों में श्रद्धान करता है। भवभ्रमण मानता है। उस भवभ्रमण के निमित्तभूत कर्मों को और मोक्ष को मानता है वह आस्तिक है।[53] जो पुण्य, पाप, सुख, दुःख को मानता है जीव की शुद्ध व

---

[51] पंचास्तिकाय/14

[52] (प्रवचनसार/115); (राजवार्तिक/4/42/15/253/3); (स्याद्वादमंजरी/23/278/11); (सप्तभंगीतरंगिणी/2/1)।

[53] जीवाइ-छद्दव्वेसु, सद्दहदि भवभमणं तस्स ।
हेदू कम्पाई-तह, मोक्खं चिय अत्थिगो जो सो।।1006॥

अशुद्ध अवस्था को मानता है एवं ईश्वर के अस्तित्व के साथ स्व-अस्तित्त को भी स्वीकार करता है।[54] जो मानता है कि जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख प्राप्त करते हैं एवं ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता नहीं है वह आस्तिक है।[55] जो मानता है मेरे कर्म का फल अन्य कोई भी संसारी जीव भोगने में शक्य नहीं है और उसी प्रकार अन्य के कर्मों का फल भोगने में मैं भी समर्थ नहीं हूँ। वह आस्तिक है।[56] आस्तिक अपने अस्तित्व में, धर्म व मोक्ष में विश्वास करता है वह आस्तिक है। इससे विपरीत दीर्घसंसारी नास्तिक मानना चाहिए।[57] नास्तिक अनेकान्त स्याद्वाद और नय को नहीं मानता। एवं ज्ञानाभास के अहङ्कार से प्रत्यक्ष न परोक्ष प्रमाण को भी नहीं मानता।[58] इस लोक में आस्तिक व नास्तिक दोनों के विद्यमान किन्तु जो ज्ञान के अहङ्कार से दूसरों को नास्तिक कहते हैं वे स्वयं भी आस्तिक कैसे हो सकते हैं।[59] दूसरों के कहने मात्र से कोई आस्तिक नहीं हो जाता और कोई नास्तिक भी नहीं हो जाता। उक्त लक्षणों से युक्त आस्तिक और उक्त लक्षणों से रहित नास्तिक जानना चाहिए।[60] जिस स्याद्वाद रूपी सुदर्शन चक्र से सभी एकान्तवादी हराए गए। जो सत्य व सम्यक् धर्म को नित्य प्रकाशित करता है, वह अनेकान्त धर्म जयवन्त होवे।[61]

इस प्रकार से इस आलेख में जैन दर्शन के मौलिक चिन्तन के विषय में चर्चा की गई है। यहाँ जितने भी विषय प्रस्तुत किए गए हैं। इसके अलावा अनेक विषय और हैं जो जैन दर्शन के मौलिक चिंतन हैं। जैन दर्शन भारत की समृद्ध परम्परा का अद्वितीय उदाहरण है। जो जीव और अजीव के द्वैतवाद पर आधारित है। इसका मूल उद्देश्य जीवात्मा को कर्मबंधन से मुक्त कर मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करना है। जैन दर्शन में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य जैसे नैतिक सिद्धांत जीवन के आधार हैं, जो आत्मा की शुद्धि और आध्यात्मिक उन्नति के लिए अनिवार्य माने गए हैं।

---

[54] मण्णदि पुण्णं पावं, जीवस्स सुद्धासुद्धवत्थं पि।
सुहं दुहं ईसरस्स, अत्थित्तेण सह सत्थित्तं ।। 1007।।
[55] सुहं दुक्खं लहेदि, सग-सग-कम्माणुसारेण जो सो।
ईसरो णेव कत्ता, सिट्ठीए मण्णदि अत्थिगो ।। 1008।।
[56] मम कम्मफलं ण को दि, भुजिदुं सक्को अण्ण-संसारी।
अण्णस्स कम्पफलं च, णेव समत्थो हं पि तहेव ।।1009।।
[57] अत्थिगो विस्सस्सेदि णिय-अत्थिते अवि धम्मे मोक्खे।
तव्विवरीय-णत्थिगो, मण्णेज्ज दु दीहसंसारी ।।1010॥
[58] णत्थिगो मण्णदि णेव, अणेगंतं सिआवायं णयं च।
णाणाभासमदेणं, पच्चक्ख परोक्ख-पमाणं पि॥1011॥
[59] अस्थिग-णत्थिग-उहयो, विज्जंति इह वरं णाणमदेण। पराण कहदि णत्थिगो, सो कहं दु अत्थिगो सयं पि ॥1012॥
[60] पराण कहण-मेत्तेण, णेव अत्थिगो वा णत्थिगो को वि। उत्तलक्खणजुद-अत्थिगो, विहीणो णत्थिगो जाण ।।1013॥
[61] जेण सिआवाय-सुदंसणेणं, सव्वां पराभूद एगंतवादी। सच्चं-सुधम्मं च पयासदे सो, णिच्चं अणेगंत उसो जयेदु। 2014॥

इस दर्शन की प्रमुख तत्त्व मीमांसा नव तत्त्वों पर आधारित है, जो जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष के माध्यम से जीव के कर्मों से बंधन और स्वतंत्रता की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। जैन दर्शन में अनेकांतवाद और स्याद्वाद ज्ञान की सापेक्षता और बहुधा दृष्टि को स्वीकार करते हुए विचारों के द्वैत और बहुधा पक्षों को समझने का मार्ग प्रदान करते हैं।

अंततः जैन दर्शन में न तो किसी सर्वोच्च सृष्टिकर्ता ईश्वर की मान्यता है, न ही कर्मों की नियति में कोई स्वतंत्र ईश्वर की व्यवस्था। प्रत्येक जीव अपने कर्मों का स्वयं कर्ता है और मोक्ष की प्राप्ति उसके स्वाधीन प्रयास पर निर्भर है। यही आत्मा की अद्वितीय स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता का संदेश है। इस प्रकार जैन दर्शन न केवल आध्यात्मिक मुक्ति का मार्ग प्रदान करता है, बल्कि जीवन के विवेकपूर्ण, संयमित और नैतिक आचरण के लिए स्थायी दर्शनशास्त्र भी प्रस्तुत करता है।

आचार्यश्री वसुनंदीजी महाराज दंसण-परिक्खा कृति का सृजन कर दार्शनिक मनीषियों के चिंतन को नवीन दिशा प्रदान की है। यह कृति निश्चित ही दर्शन के क्षेत्र में मील का पत्थर प्रमाणित होगी।